मर्ज

आशा पाण्डेय

मर्ज

...तो मैं बात उस खंडहर की कर रहा था, जो मेरे गाँव के किनारे पर स्थित है और

जिससे लग कर बरगद के चार विशाल पेड़ अपनी जटाओं को जमीन से लटकाए खड़े हैं। यह खंडहर कई साल पुराना है और अब यह छोटे से टीले का आकार ले चुका है।

पर, गाँव वाले इसे तूफानी का खंडहर ही कहते हैं। बरगद के ये चार विशाल पेड़ घने वन का आभास दिलाते हैं। मेरे गाँव को दो ओर से घेरती नदी बरगद के पेड़ों के बगल से होकर बहती है जो इस मैदानी गाँव को भी पहाड़ी गाँव जैसा सुरम्य बनाती है।

मेरे गाँव की इसी सुंदरता से मुग्ध होकर दो किलोमीटर दूर स्थित कोट (किला) के शहजादे जब दिल्ली से कोट में पधारते थे तो शाम की सैर में कभी-कभी दो-चार लट्ठधारी सेवकों के साथ खंडहर पर खेलने आ जाते थे। मेरे गाँव के बच्चे, जिनमें मैं भी शामिल होता था, निहाल हो जाते थे और उनके पीछे-पीछे भागते हुए उनकी इच्छा से उनके खेल में शामिल हो जाते थे। शहजादे हमारी पीठ पर लपक कर चढ़ लेते और बरगद की डाल को छूने का प्रयास करते। हम उन्हें अपनी पीठ पर अच्छे से सँभाले रहने में पूरी ताकत लगा देते। वे बरगद की लटकती जटाओं को पकड़ लेते और पेंग बढ़ाने के लिए लात से हमारी छाती पर धक्का देकर झूलने लगते। दौड़कर खंडहर पर चढ़ जाते, उछलते-कूदते और अंत में उसकी गंदी मिट्टी से निजात पाने के लिए पास की नदी में छलाँग लगा देते। जब धुल-पुँछ कर नदी से बाहर निकलते तो लट्ठधारी सेवकों के साथ कोट में चले जाते।

जब कोट के शहजादे नदी में नहा रहे होते तो हम गाँव के बच्चों को नदी में उतरने की मनाही थी। लट्ठधारी सेवक घूर कर हमें भगा देते थे। हमारे गाँव के बड़े-बुजुर्ग भी बच्चों को बरज देते थे। शहजादे राजा-महाराजा थे। राजा-महाराजा और प्रजा एक ही नदी में, एक ही घाट पर, एक साथ कैसे नहा सकते हैं। उनके जाने के बाद इतनी देर से ललचाए हम बच्चे भी नदी में छलाँग लगा देते। जी-भरकर पानी में डूबते, उतराते, तैरते।

खूब मजा आता। लेकिन दिक्कत तब हो जाती जब नहाने के बाद मैं लगातार छींकने लगता। माँ कहती-इतनी देर तक खंडहर की धूल में खेला, फिर नदी में नहाया इसलिए सर्दी हो गई। पर दो बाते थीं जो मुझे कभी समझ में न आईं। एक तो यह कि - खंडहर में खेलना तथा नदी में नहाना तो हम बच्चों का नित्य का खेल था पर सर्दी कोट के शहजादे के साथ खेलने से ही क्यों होती थी? दूसरी बात यह कि गाँव के अन्य बच्चे भी तो शहजादे के साथ खंडहर की धूल में खेलते थे, नदी में नहाते थे, उन्हें क्यों नहीं होती थी सर्दी? माँ कहतीं - तेरा शरीर नाजुक है। इस वर्षों पुराने खंडहर की जमीं हुई धूल-मिट्टी तुझे नुकसान करती है। धूल में खेल कर जब तू घंटों नहा लेता है तो छींकना शुरू कर देता है। मेरी माँ वैद्य की बेटी थी इसलिए मेरी सर्दी का यह कारण ही उसे सही लगता था।

मेरे मन में एक सवाल और भी उठता था कि, कोट के शहजादे को भी तो सर्दी हो जाती होगी। वे तो और भी नाजुक रहे होंगे। दिल्ली में रहते थे। आजादी के तुरंत बाद उनके पिता बाबूसाहब को दिल्ली से बुलावा आया था।

जब वे दिल्ली से कोट में आते तो उनकी गाड़ी के आगे-पीछे कई-कई गाड़ियाँ होती। अगल-बगल के गाँवों के तमाम लोग उमड़ पड़ते थे बाबू साहब के दर्शन के लिए। तो ऐसे में मेरा यह सोचना कि शहजादे मुझसे अधिक नाजुक होंगे और नदी में नहाकर बीमार पड़ जाते होंगे। कतई गलत नहीं था।

दिन बीतते गए पर दिमाग में प्रश्न कुलबुलाता ही रहा। मेरे पास इस प्रश्न के हल का कोई जरिया भी न था। खंडहर की धूल साल भर मेरे नथुनों में समाती रहती पर छींक शुरू होती शहजादे के आने के बाद ही।

लो, मैं तब से खंडहर का ही जिक्र किए जा रहा हूँ। अरे भाई, जब तक मैं आपको ये न बता दूँ कि आखिर इसका रहस्य क्या है, आप समझेंगे कैसे? ...नहीं जी, डरें नहीं, किसी भूत-प्रेत का निवास नहीं है यहाँ। बारह बजे रात में यहाँ भूतों की सभा नहीं लगती है और न ही घुँघुरुओं की रुन-झुन सुनाई पड़ती है।

मुझे रात में सुनाई जाने वाली आजी की कहानियों ने टुकड़ों-टुकड़ों में इस खंडहर के रहस्य को तोड़ा था। आजी इस गाँव में तथा आस-पास के कई गाँवों में ऐसे कई खंडहर होने की बात करती थीं जो खुली आँखों से तो नहीं दिखते लेकिन मौजूद हैं आज भी। खैर... तो आजी बताती थीं कि, यह खंडहर हमारे गाँव के मातादीन उर्फ तूफानी का घर था। दादा, बाबा के जमाने की दो खंड की बखरी थी उसकी। निरबंसिया था मातादीन। उसके मरने के बाद घर की देख-भाल करने वाला कोई न बचा। कुछ दिन तक तो घर आँधी-तूफान से अकेले लड़ता रहा फिर भहरा के खंडहर बन गया।

यह उन दिनों की बात थी जब राजे-रजवाड़ों का राज था। गाँवों में जमींदारों की तूती बोलती थी। मेरे गाँव से सिर्फ दो कि.मी. की दूरी पर स्थित इस कोट में जमींदार बाबू रायबहादुर साहब का राज था। बड़ा रुतबा था रायबहादुर साहब का। हाथी पर बैठ कर जब वे अपने इलाके में निकलते तो इलाके के लोग अपना सिर नीचे झुका कर उनके वहाँ से आगे चले जाने तक खड़े रहते थे। गाँव की बहू-बेटियाँ अपना-अपना काम बीच में रोक कर घर के भीतर चली जातीं थीं। बाबू रायबहादुर की नजर जिधर घूम जाती थी वहाँ कहीं दया बरस पड़ती थी तो कहीं क्रोध उबल पड़ता था।

मातादीन गाँव का गरीब किसान था। गरीब यूँ कि दादा-बाबा के जमाने से ही जमीन बँटते-बँटते उसके हिस्से में सिर्फ चार बिस्वा जमीन ही आई थी। बरसात के महीने में वह उसी जमीन में धान बो लेता था, ठंडी में गेहूँ। कभी फसल अच्छी हो जाती थी, कभी खराब। जमींदार का लगान चुकाने के बाद उसके पास इतना अनाज नहीं बच पाता था कि वह साल भर अपना और अपनी पत्नी का पेट भर सके। चार बिस्वा जमीन होती ही कितनी है! वैसे गाँव वालों का मत था कि मातादीन के घर में दरिद्दर समा गया है। बिना बाल बच्चों का, सिर्फ दो जन का परिवार, फिर भी आए दिन फाँका ही पड़ा रहता है।

एक दिन मातादीन 'कोट' के बगल से निकल रहा था। 'कोट' के मुख्य दरवाजे पर दो हट्टे-कट्टे दरबान तेल पिलाई लाठी लिए खड़े थे। मातादीन कोट के नजदीक पहुँचने के कुछ पहले से ही अपना सिर नीचे झुकाकर चला आ रहा था। मुख्य दरवाजे तक आते-आते एक बार उसका सिर ऊपर उठ गया। लगान उगाही का समय था। मजदूर लगान में मिले अनाज को बोरों में भर कर अहाता की दीवाल से सटा कर रख रहे थे।

बोरों को, एक के ऊपर एक लादते हुए अहाता की दीवाल की ऊँचाई के बराबर तक रखा गया था।

मातादीन ने क्षण भर के लिए सिर ऊपर उठाया था, पर भूख की तीव्रता सीधे अनाज के बोरों से जा टकराई। क्षण-भर में ही उसने बोरों के रख-रखाव की स्थिति का अंदाज लगा लिया। अब उसके दिमाग में हलचल मची। तमाम तरह की योजनाएँ बनने-बिगड़ने लगीं।

अपने रास्ते पर चलते हुए वह कोट के पिछवाड़े तक आ पहुँचा। एक बार फिर उसने अपनी नजरें अहाते के दीवार की ओर गड़ा दी। क्षण भर ठिठक कर कोट की ओर देखा और अपने रास्ते पर आगे बढ़ गया।

आधी रात बीत जाने के बाद एक धम्म-सी आवाज ने कोट के पहरेदारों को सचेत कर दिया। जिस ओर से आवाज आई थी पहरेदार उस ओर दौड़ पड़े। जब तक पहरेदार पिछवाड़े पहुँचते, मातादीन पीठ पर गेहूँ का बोरा लादकर भागने लगा था।

पहरेदार मातादीन के पीछे दौड़े जरूर पर उसे पकड़ न पाए। अँधेरी रात का फायदा उठाकर मातादीन आम के घने बगीचे में घुस गया। वहाँ से वह किस ओर भागा, पहरेदार समझ न पाए। कुछ देर खोज-बीन करके वापस लौट आए।

सुबह होने पर डरते-डरते पहरेदारों ने बाबू साहब से रात की संपूर्ण घटना का बयान किया। चोर का साहस सुनकर, बाबू साहब अचंभित हुए तथा अपने पहरेदारों की नाकामी पर क्रोध भी आया उन्हें।

उन्होंने पहरेदारों को डपटा - "तुम दोनों के हाथ में सिर्फ लाठी थी और चोर के पीठ पर पचास किलो वजन का बोरा, फिर भी वह भाग निकला! तुम लोग उसे पकड़ न पाए! बस मुसडंडों की तरह खा-खाकर फैल रहे हो ...आज से तुम दोनों पहरेदारी नहीं करोंगे ...जाकर खेत में काम करो और हाँ, रसोइए को कह दो कि इन दोनों को एक वक्त का भोजन बंद कर दे ...ससुरे भैंसे जैसे मोटाए जा रहे हैं।"

बाबू साहब को क्रोध में देख कर कोट में सन्नाटा छा गया था। दोनों पहरेदार सिर झुकाए खड़े थे। यह पहला अवसर था जब पहरेदारों को इतनी बड़ी गलती की सजा में सिर्फ एक वक्त का भोजन बंद किया गया था, कोड़े नहीं बरसाए गए थे उन पर। बाबूसाहब का मन बिचलित था। वे उस व्यक्ति को देखना चाहते थे जो पीठ पर बोरा लाद कर भी इतनी तेज भागा कि उनके पहरेदारों की पकड़ में न आया।

बाबू साहब ने हुक्म दिया कि आस-पास सभी गाँवों में डुग्गी पिटवा दी जाए कि कोट से गेहूँ का बोरा लेकर भागने वाले व्यक्ति के साहस से बाबूसाहब खुश हैं ...उसे वे अपने हाथों से इनाम देना चाहते हैं ...आज दोपहर तक उस व्यक्ति को कोट में हाजिर होने का हुक्म दिया जाता है। ...यह फरमान सुन कर भी यदि वह व्यक्ति कोट में हाजिर न हुआ तो बाबूसाहब के जासूस उसे खोज निकालेंगे और उसकी चमड़ी उधेड़ ली जाएगी।

डुग्गी की आवाज ने मातादीन की घरवाली को डरा दिया। काँपती आवाज में वह मातादीन पर बिफर पड़ी - "लो और करो राजे-रजवाड़ों के यहाँ चोरी ...जल में रहे मगर से बैर।

अब खाओ पेट भरकर। मति मारी गई थी तुम्हारी ...तुम तो मरोगे ही मुझे भी मरवाओगे...।'

'चुप कर, ध्यान से सुन तो। सुन, वो लोग क्या बोल रहे हैं ...इनाम मिलेगा इनाम। पीठ पर पचास किलो अनाज का बोरा लादकर कोट के पहरेदारों से अधिक तेज भागने वाले पर बाबू साहब खुश हुए हैं। तब से बड़बड़ाए ही जा रही है। मातादीन तुनक कर घर से बाहर निकल गया।

डुग्गी की आवाज पूरे गाँव में गूँज रही थी। गाँव के लोग गहरे आश्चर्य में थे। कोट से अनाज चुराने का साहस! किसने किया होगा!

मातादीन तन कर डुग्गीवालों के पास चला गया। गाँव वाले चौंक गए। आँखें मल-मल कर सब मातादीन को देख रहे थे। जैसे, विश्वास करना चाह रहे हों कि हाँ, यही हकीकत है... वो नींद में नहीं हैं।

मातादीन गर्व से झूमते हुए डुग्गीवालों से कह रहा था - "बंद करो ये डुगडुगी ...मैं ही हूँ तूफानमेल, कोट से बोरा लेकर भागने वाला ...चलो, चलकर मेरे घर में बोरा देख कर विश्वास कर लो, फिर ले चलो मुझे बाबूसाहब के दरबार में ...बड़े दिन बाद किस्मत बदली है।" मातादीन की मुरझाई आँखें चपल हो गई थीं।

बस उस दिन से मातादीन गाँव में तूफान मेल के नाम से जाना जाने लगा। धीरे-धीरे तूफान मेल से कब तूफानी में बदल गया, पता ही न चला। अब गाँव वाले उसे तूफानी ही कहने लगे थे।

नहीं जी, कहानी अभी खत्म नहीं हुई है। मैं भी तो देखो, कितना पागल हूँ! उसके नाम पर अटक गया ...अरे गाँव वाले उसे किसी भी नाम से बुलाए जी, क्या फर्क पड़ता है? तो चलिए मैं आगे की कहानी सुनाता हूँ।

डुग्गी पीटने वालों को गेहूँ का बोरा दिखा कर मातादीन ने अलगनी से अँगोछा उठाया और कंधे पर डाल कर कोट जाने के लिए तैयार हो गया।

उसकी घरवाली डर के मारे काँप रही थी। हाथ जोड़ कर डुग्गी पीटने वालों से ही विनती कर डाली, "दया करें हुजूर, भूख ने ये गलती करवाई है।"

मातादीन अपनी घरवाली की बेवकूफी पर हँस पड़ा, "औरत की जात ...अकल तो ऐड़ी में रहती है। खुशी के मौके को भी रो-धोकर खराब कर रही है। ...बाबू साहब इनाम देने के लिए बुलाए हैं ...फाँसी चढ़ाने के लिए नहीं।"

'राजे-रजवाड़े की बात! कब गुस्सा भड़क जाए, भगवान भी न समझ पाएँ ...मैं तुमको वहाँ अकेले न जाने दूँगी... साथ चलूँगी तुम्हारे।" मातादीन की घरवाली अड़ गई थी। मातादीन इनाम मिलने की खुशी में डूबा था। घरवाली को कोट में साथ ले चलने की बात मान गया।

किसी विजेता की भाँति सबसे आगे मातादीन उसके पीछे डरी-सहमी उसकी घरवाली, तथा सबसे पीछे डुग्गीवाले कोट की ओर बढ़े जा रहे थे। मातादीन की घरवाली का एक मन उखड़ता, डरता, काँपता तो दूसरा मन उसे थपथपा भी देता, क्या पता, मातादीन सच कह रहा हो ...दिन फिरने वाले हों, खुशी का क्षण आने वाला हो।

कोट पहुँच कर मातादीन को बाबू रायबहादुर के सामने पेश किया गया। मातादीन की घरवाली भी उसके पीछे-पीछे बाबू साहब के सामने आ गई। बाबू साहब कुछ पूछते उसके पहले ही डुग्गीवालों ने बता दिया - इसकी घरवाली है हुजूर, मानी नहीं, जबरन इसके साथ यहाँ तक आ गई।

"हूँ" बाबू साहब ने ऊपर से नीचे तक एक नजर उस पर डाली फिर मातादीन की ओर मुखातिब हुए - 'तो तुम हो हमारे कोट से अनाज चुराकर भागने वाले।" इनाम मिलने की खुशी में सराबोर तूफानी बाबू साहब की हुंकारती हुई रौबदार आवाज को सुन कर काँप गया। गर्दन नीची हो गई उसकी।

"देखने में तो मरकट जैसे पिलपिले दिख रहे हो लेकिन, ताकत इतनी है तुममें! वाह भाई वाह ...कमाल है तुम्हारा। इनाम तो तुम्हें जरूर मिलेगा लेकिन, चोरी की सजा पहले मिलेगी ...और सजा भी ऐसी मिलेगी कि फिर कोई दुबारा ऐसा दुस्साहस न कर सके।"

"...अरे भाई! सजा जरूरी है। कोट में चोरी की हिम्मत!" अपने एक-एक शब्द पर जोर देते हुए बड़ी धीर-गंभीर आवाज में, किसी रहस्य का उद्घाटन करने जैसी मुद्रा में बाबू साहब बोले जा रहे थे। परिणाम की गंभीरता का अंदाज लगा कर मातादीन काँपे जा रहा था। अब तक सिकुड़ कर एक ओर खड़ी उसकी घरवाली आगे बढ़ कर बाबूसाहब के पैरों पर गिर पड़ी।

"दुहाई हो सरकार की, दया करें माई-बाप, रहम करें ...पेट की आग ने ढिठाई करवाई हुजूर! इसे बख्श दें ...आगे से ऐसा नहीं होगा सरकार, ये कोट की तरफ आँख उठा कर देखेगा भी नहीं। एक बार सरकार, बस एक बार माफ कर दें।

घबराहट में उसे ध्यान ही न रहा कि कब उसके चेहरे का घूँघट हटा और कब उसका आँचल सिर से भी फिसल गया। वह तो बस धार-धार रोए जा रही थी और माफ करने की विनती किए जा रही थी।

बाबू साहब ने अनावृत हुए उसके चेहरे को नजर भर कर देखा, इतनी सुंदर! इस मरकट की झोली में! कुछ क्षण उसे देख लेने के बाद उन्होंने एक लंबी साँस ली फिर मातादीन की ओर देख कर अपनी आवाज को भरसक मधुर बनाते हुए बोले "चलो, तुम्हारी सजा माफ की... और इनाम तुम्हारा यह है कि हर महीने एक दिन तुम कोट में आ जाया करो ...अपनी पीठ पर गेहूँ का जितने किलो वजन का बोरा लाद सको, लाद कर चले जाया करो।"

यह सुन कर मातादीन खुशी और कृतज्ञता से बाबू साहब के कदमों पर लोट गया। बाबू साहब की बात अभी पूरी नहीं हुई थी उन्होंने आगे कहना शुरू किया - "हाँ भई, मेरी एक शर्त है, जब मैं तुम्हारे घर खबर भिजवाऊँ तब अपनी घरवाली को अनाज की साफ-सफाई के लिए कोट में भेज दिया करो। इसकी मजदूरी तुम्हें अलग से मिल जाएगी। ...देख तो रहे हो यहाँ मजूरिनों की कितनी कमी है। अब अनाज को चालना, पछोरना महिलाएँ ही कर पाती हैं न। अब तुम अपना इनाम लेकर घर जाओ और इसे यहीं छोड़ जाओ। अनाज का जो ढेर लगा है ये उसे साफ कर देगी तो हमारे सेवक इसे तुम्हारे घर पहुँचा आएँगे।"

मातादीन जड़ हो गया। खुशी टूट कर धराशायी हो गई। सूखते गले और तालू से चिपकती जबान से शब्दों को ठेल कर इतना ही कह पाया कि "हुजूर, घर में भी बहुत काम रहता है... इसका आना ...पर मातादीन के लाख प्रयत्न के बाद भी उसके शब्द बाबू साहब तक न पहुँच सके। उसका बोलना पूरा होता उससे पहले ही बाबू साहब वहाँ से उठ कर चले गए।

मातादीन अनाज चालने-पछोरने का मतलब समझता था। समझती उसकी घरवाली भी थी। किंतु विरोध का साहस किसी में नहीं था। ये बाबू साहब का हुक्म था। हुक्म का विरोध नहीं होता। क्या करे मातादीन! किससे कहे। दोनों धम्म से वहीं जमीन पर बैठ गए। चुपचाप बैठे रहे। निशब्द, भीतर सुलगते हुए, ऊपर से मौन। मौन का धुआँ उठता रहा जिससे दालान भर गया। धुएँ से दोनों की साँस घुटने लगी पर कुछ अनहोनी नहीं हुई जैसे दोनों ने ही समझ लिया हो कि यही हमारी नियति है। धुएँ में जीना, जीवित दिखना।

मातादीन के चेहरे पर शर्मिंदगी थी तो उसकी घरवाली के चेहरे पर अफसोस। क्यों आई थी कोट में।

"कब तक यहाँ बैठा रहेगा तू, बाबू साहब का हुक्म हुआ है कि अनाज लेकर तू गाँव जा, इसे यहीं छोड़ जा। इसको काम समझा दिया जाएगा।" किसी सेवक की कर्कश आवाज ने दोनों को चौंका दिया।

मातादीन ने साहस किया, "मुझे अनाज नहीं चाहिए। कल रात में ही तो बोरा भर अनाज ले गया था।"

धत्त ससुर, ले गया था कि चुराया था ...चल उठ यहाँ से, उठा बोरा और निकल जा।

मातादीन की घरवाली पति के हाथ को पकड़ कर उसकी ओर आशा भरी निगाहों से देखने लगी फिर न जाने क्या सोच कर धीरे से अपना हाथ खीच ली तथा सेवकों के साथ मातादीन को जाता हुआ देखती रही। मातादीन जा नहीं रहा था। जमींदार के सेवक उसे धक्के देकर निकाल रहे थे। अब बाकी जिंदगी उसे ऐसे ही धक्के खाने थे।

पहले गरीबी थी। गरीबी के साथ मधुर गीत थे। इंद्रधनुषी रंग थे। जिसमें दोनों डूबते उतराते और गरीबी को सोख जाते। पेट पिचकता पर होठों से हँसी झरती। पर अब गीत विस्मृत हो गए, इंद्रधनुषी रंग पुछ गया।

अब, जब-तब कोट से उसकी घरवाली के लिए बुलावा आने लगा। तूफानी ने विरोध किया भी किंतु जमींदार बाबू साहब ने उसके आस-पास आतंक का ऐसा साम्राज्य फैलाया कि तूफानी उसमें घिरकर फँस गया। बोल ही न फूटे उसके।

बाबू साहब के हुक्म से तूफानी गेहूँ के बोरों को अपने घर लाता रहा पर उन्हें खोलता कभी न। फाँके पर फाँके पड़ते रहे, पर कोट का एक दाना भी दोनों न छूते। ऐसा करके उन्हें अपने स्वाभिमान को बचा ले जाने अथवा जमींदार से लड़ जाने का संतोष होता। जमींदार को क्या फर्क पड़ता है, न खुले बोरा। बोरा खोलना, न खोलना तूफानी की इच्छा है। जमींदार अपनी इच्छा का सोचता है। उसकी इच्छा पूरी हो रही है।

यूँ तो अब विष निगलना सीख लिया था तूफानी ने पर क्या करे उस शरीर का जहाँ भीतर ही भीतर घुमड़-घुमड़ कर विष अपना प्रभाव दिखाने लगा था। यह विष उसकी घरवाली पर भी चढ़ रहा था। दिनों-दिन सूख रही थी वह। सुंदरता जाती रही उसकी। कुछ सालों बाद कोट से उसका बुलावा बंद हो गया पर दोनों के चेहरे पर खुशी न लौटी। दोनों के पेट और दिल में आग धधकती जिसमें वे झुलसते जा रहे थे। इस दाह को सहना उनके वश का नहीं रह गया था अब।

कहते हैं गेहूँ के बोरों से पटा था उनका घर, पर प्राण निकले उनके भूख से। कुछ दिनों के अंतराल में बारी-बारी से बिदा हो गए दोनों। फिर कुछ दिनों बाद घर भी गिर भहरा गया।

तो ये था उस खंडहर का इतिहास। आजी ने टुकड़ों-टुकड़ों में यही बताया था। अब आप भी सोच रहे होंगे कि इसमें ऐसा क्या था कि मुझे उबकाई-सी आती है इसको जोड़ते वक्त! आजी ने और भी कई बातें बताई थी बाबू साहब की बहादुरी (!) की।

हाँ जी, किसना, ननकू, सद्दीक ...कई नाम थे, जो बाबू साहब के अलग-अलग खेल के अलग-अलग विदूषक थे। पर न जाने क्यों मेरा छींकना शुरू हुआ इसी खंडहर की धूल से! सुबह दरवाजा खुलते ही ताजी हवा के झोंको के साथ खंडहर की धूल मिट्टी भी समा जाती है मेरे नथुनों में। बस छींकना शुरू हो जाता है मेरा।

"कोई इलाज नहीं है भाई, लाइलाज है यह बीमारी।"

"अरे नहीं, इलाज करवाया था। डॉक्टर, वैद्य, हकीम सब के पास गया था पर धूल को पहचानते ही सब हाथ खींच लेते हैं। ...अब तो इसमें दिल्ली की धूल भी समा गई है न।"

लाल किला पर जब पहली बार तिरंगा लहराया था तो आजी समेत गाँव-जवार के तमाम लोगों को लगा था कि अब अपना राज आ गया है। फुर्सत मिली ठकुरसोहाती से। पर कहाँ? बाबू साहब पहुँच गए दिल्ली और वहाँ से लद-लद कर आने लगी धूल जो मेरे गाँव के इस खंडहर से चिपकती ही चली गई।

पहली मर्तबा जब बाबू साहब दिल्ली से कोट में आए थे, याद था आजी को, उनकी गाड़ी के आगे-पीछे गाड़ियों का रेला निकला था। तीन से चार दिन तक टोकरी भर-भर कर मिठाइयाँ बँटती रहीं थी गाँवों में। सब खुश थे। अपना राज। अपने राजा।

जिस दिन राजा राजधानी को लौटे उससे एक दिन पहले की रात कोट के बाएँ स्थित गाँव की दो लड़कियाँ गायब हो गईं थीं।

दबी जबान में आजी और गाँव की बहुत-सी महिलाओं का मानना था कि गाड़ी में बैठाकर उन्हें दिल्ली ले जाया गया था, पर दूसरे यह बात मानने को तैयार नहीं थे। आखिर क्या कमी है दिल्ली में लड़कियों की। एक से बढ़कर एक, परी जैसी लड़कियाँ लोंटती होंगी बाबू साहब के कदमों में। इन मैली कुचैली लड़कियों का क्या करेंगे वे।

बाबू साहब की ओर से बोलने वाले हजारों, लड़कियों को खोजने वाले सिर्फ उनके माँ-बाप, उनका परिवार। कहते हैं यह बात भी दब गई इसी खंडहर के नीचे।

जब देश में पहला चुनाव आया था तब तक मैं खासा समझदार हो गया था। शहजादा साहब जो बचपन में इसी टीले पर उछल-कूद कर अपना पैर मजबूत किए थे, अब चुनाव लड़ रहे थे। पूरी जवार धन्य-धन्य हो उठी थी। बाबू साहब के वारिस! अपने राजा!

मैं गाँव-गाँव घूमता हुआ लोगों से कहता - 'सोचो भाई, कब तक चिपकती रहेगी खंडहर में मिट्टी। पहले ये कोट में बैठकर अत्याचार करते थे अब दिल्ली में बैठकर कर रहे हैं। कहाँ मिली हमें स्वतंत्रता? बस रूप बदल गया है इनके शासन का। इनकी क्रूरता से खंडहर बढ़ेंगे गाँव में।' मेरी बात सुनकर सब हँस देते जैसे मैं पागलपन के दौरे में बोल रहा था।

मैं, इस घर से उस घर, इस गाँव से उस गाँव चक्कर लगाता रहा। शहजादा साहब की गाड़ियाँ लोगों को बूथ तक पहुँचाती रही। लठैतों का ऐसा जमावड़ा कि विरोधी वोट ही न डाल पाए। एकाध जो पहुँच भी गए बूथ तक तो वे भी बदरंग ही लौटे। उनका वोट पहले ही डाला जा चुका था। भारी बहुमत से जीत गए शहजादा साहब।

जीत का जश्न जब मना तो कुछेक के हाथ-पैर भी तोड़े गए जिसमें मैं भी शामिल था। ढोल-नगाड़े, लाई बताशे, मिठाइयाँ, चीख-पुकार सब एक में एक गड्ड-मड्ड।

जीतकर मंत्री बन गए शहजादा साहब। कोट तक पहुँचने के लिए सड़क बनी, जो चकरोट को छोड़ते हुए खेतों के बीच से होकर निकली। गरीबों के खेत गए तो क्या हुआ, मुख्य सड़क से कोट की दूरी तो एक किलोमीटर कम हो गई। सड़क पर डामर फैलाकर चमकाया गया। कोट चमका। सड़क चमकी। चमक का कुछ कतरा आस-पास के गाँव में भी छितराया।

अधिक मुनाफे के नाम पर हरे आम के सघन बगीचे को काट कर उस जगह युकलिप्टस लगाया गया। शहजादा साहब गरीबों के बारे में सोचते थे। दस-दस पैसे के पौधे मुफ्त में बँटवा दिए। खेतों में गेहूँ-धान की जगह सफेदा लग गया। अब जब सफेदा बड़ा हो जाएगा तो बिजली के खंभों के लिए सरकार खरीद लेगी। शहजादा साहब ही बिकवा देंगे अच्छे दामों में। पैसा ही पैसा बरसेगा गाँव में। कुछ दिन गेहूँ-धान नहीं बो पाए तो क्या? आम गया तो क्या? छाँव गई तो क्या? सफेदा तो है। सफेदे पर चढ़कर बिजली आएगी गाँव में। कच्चे आम को खा-खा कर, पक्के आम को

चूस-चूस कर जो अपना पेट भरते थे वे भी खुश थे। बटन दबाते ही लप्प से उजियारा फैल जाएगा। शहजादा साहब कहते हैं तो जरूर ऐसा होगा।

धीरे-धीरे सफेदा की जड़ें जमीन में फैलने लगीं, गाँव-जवार के कुएँ सूखने लगे। पानी के लिए गाँव की लड़कियाँ गगरा, बाल्टी, मटका लेकर इधर-उधर भटकने लगीं।

नदी भी बस, एक पतली धार के रूप में बची है। जमीन की उर्वराशक्ति बिला गई। चुनाव आता रहा, मैं छींकता रहा।

लो, अब फिर से चुनाव आ गया। दिल्ली के एक युवा राजकुमार के आवाहन पर देश भर के तमाम राजा महाराजाओं के पुत्र-पुत्रियों को टिकट दिया गया। हमारे क्षेत्र से शहजादा साहब के पुत्र को टिकट मिल गया।

एक बार फिर मेरी दौड़ शुरू हुई गाँव जवार में। मैं कहता रहा कि किसी कर्मठ इनसान को चुन कर भेजो दिल्ली तब बदलेगा हमारा भाग। कोट को छोड़ो अब, नहीं तो वो बने रहेंगे हमारे राजा और हम उनकी प्रजा। बस प्रजा ही बने रहना हमारा भाग्य बन गया है। बदलो इसे।

मैं नौजवानों को खंडहर से लेकर कोट तक की कहानी बताता रहा, पर उसी खंडहर को लतियाते, धकियाते लोग पहुँच गए बूथ पर और जीत गए राजकुमार। प्रजा खुश। देश की जनता शासन की बागडोर युवा नेतृत्व को सौंपना चाहती है। अब होगा परिवर्तन! अब आएगा रामराज्य!

मैं छींक ही रहा हूँ। गाँव वालों की तमाम अच्छी बातों पर मैं छींकता ही रहता हूँ। अशुभ का संकेत। बूढ़ा हो चला हूँ, सठिया गया हूँ। गाँव वाले मुझसे कतराते हैं, पर मैं क्या करूँ? वे कहते हैं कि मैं अपना दरवाजा खंडहर की ओर से बंद कर के पिछवाड़े की ओर से खोल लूँ। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। पर मैं खंडहर से चिपका ही हूँ। गाँव वालों की बातों पर कान ही नहीं धरता। खंडहर की धूल मिट्टी फाँकता जा रहा हूँ, छींकता जा रहा हूँ।

...मर्ज बढ़ता ही जा रहा है। छींक खरास, खाँसी तक तो ठीक था पर अब तो चौबीसों घंटे नाक के साथ-साथ आँख भी बह रही है। लोग कहते हैं कि रोग अब दिल तक पहुँच गया है।